

जैनी कौन हो सकता है?

स्व.पं. जुगल किशोर जी मुख्तार

जो जीव जैनधर्म को धारण करता है वह जैनी कहलाता है। परंतु आजकल के जैनी जैनधर्म को केवल अपनी ही पैतृक संपत्ति (मौरूसी तरका) समझ बैठे हैं और यही कारण है कि, वे जैनधर्म दूसरों को नहीं बतलाते और न किसी को जैनी बनाते हैं। शायद उन्हें इस बात का भय हो कि, कहीं दूसरे लोगों के शामिल हो जाने से इस मौरूसी तरके में अधिक भागानुभाग होकर हमारे हिस्से में बहुत ही थोड़ा सा जैनधर्म बाकी न रह जाय! परंतु यह सब उनकी बड़ी भारी भूल तथा गलती है और आज इसी भूल तथा गलती को सुधारने का यत्न किया जाता है।

हमारे जैनी भाई इस बात को जानते हैं और शास्त्रों में जगह-जगह हमारे परम पूज्य आचार्यों का यही उपदेश है कि, संसार में दो प्रकार की वस्तुएँ हैं- एक चेतन और दूसरी अचेतन। चेतन को जीव और अचेतन को अजीव कहते हैं। जितने जीव हैं वे सब द्रव्यत्व की अपेक्षा अथवा द्रव्यदृष्टि से बराबर हैं- किसी में कुछ भेद नहीं है- सबका असली स्वभाव और गुण एक ही है। परंतु अनादिकाल से जीवों के साथ कर्म-मल लगा हुआ है, जिसके कारण उनका असली स्वभाव आच्छादित है, और वे नाना प्रकार की पर्यायें धारण करते हुए नजर आते हैं। कीड़ा, मकोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, शेर, बघेरा, हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाय, बैल, मनुष्य, पशु, देव, और नारकी आदिक समस्त अवस्थाएँ उसी कर्म-मल के परिणाम हैं, और जीव की इस अवस्था को 'विभावपरिणति' कहते हैं।

जब तक जीवों में यह विभावपरिणति बनी रहती है तब ही तक उनको 'संसारी' कहते हैं और तभी तक उनको संसार में नाना प्रकार के रूप धारण करके परिभ्रमण करना होता है। परंतु जब किसी जीव की यह विभावपरिणति मिट जाती है। और उसका निजस्वभाव सर्वाङ्गरूप से अथवा पूर्णतया विकसित होता है तब वह जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है; और इसप्रकार जीव के 'संसारी' तथा 'मुक्त' ऐसे दो भेद कहे जाते हैं।

इस कथन से स्पष्ट है कि जीवों का जो असली स्वभाव है वही उनका धर्म है, और उसी धर्म को प्राप्त

कराने वाला जैनधर्म है। अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिये कि, जैनधर्म ही सब जीवों का निजधर्म है। इसलिये प्रत्येक जीव को जैनधर्म के धारण करने का अधिकार प्राप्त है। इसी से हमारे पूज्य तीर्थंकरों तथा ऋषि-मुनियों ने पशु-पक्षियों तक को जैनधर्म का उपदेश दिया है और उनको जैनधर्म धारण कराया है, जिनके सैकड़ों ही नहीं किंतु हजारों दृष्टान्त प्रथमानुयोग के शास्त्रों (कथाग्रंथों) को देखने से मालूम हो सकते हैं।

हमारे अंतिम तीर्थंकर 'श्री महावीर स्वामी' जब अपने इस जन्म से नौ जन्म पहले सिंह की पर्याय में थे तब उन्हें किसी वन में एक महात्मा के दर्शन करते ही जातिस्मरण हो आया था। उन्होंने उसीसमय, उक्त महात्मा के उपदेश से, श्रावक के बारह व्रत धारण किये, केसरी सिंह होकर भी किसी जीव को मारना और माँस खाना छोड़ दिया, और इसप्रकार जैनधर्म को पालते हुए सिंह पर्याय को छोड़कर वे पहले स्वर्ग में देव हुए और वहाँ से उन्नति करते-करते अंत में जैनधर्म के प्रसाद से उन्होंने तीर्थंकर पद प्राप्त किया।

'पार्श्वनाथपुराण' में, अरविंद मुनि के उपदेश से एक हाथी के जैनधर्म धारण करने और श्रावक के व्रत पालन करने के संबंध में इसप्रकार लिखा है:-

अब हाथी संजम साधै। त्रस जीव न भूल विराधै॥
समभाव छिपा उर आनै। अरि मित्र बराबर जानै॥
काया कसि इन्द्री दंडै। साहस धरि प्रोषध मंडै॥
सूखे तृण पल्लव भच्छै। परमर्दित मारग गच्छै॥
हाथीगण डोह्यो पानी। सो पीवै गजपति ज्ञानी॥
देखे बिन पाँव न राखै। तन पानी पंक न नाखै॥
निजशील कभी नहिं खोवै। हथिनी दिश भूल न जोवै॥
उपसर्ग सहै अति भारी। दुध्यान तजै दुखकारी॥
अघ के भय अंग न हालै। दृढ़ धीर प्रतिज्ञा पालै॥
चिरलौं दुर्द्धर तप कीनो। बलहीन भयो तनछीनो॥
परमेष्ठि परमपद ध्यावै। ऐसे गज काल गमावै॥
एकै दिन अधिक तिसायौ। तब वेगवतीतट आयौ॥
जल पीवन उद्यम कीधौ। कादोद्रह कुन्जर बीधौ॥
निश्चय जब मरण विचारौ। संन्यास सुधी तब धारौ॥
इससे साफ प्रगट है कि अच्छा निमित्त मिल जाने

और शुभ कर्म का उदय आ जाने पर पशुओं में भी मनुष्यता आ जाती है और वे मनुष्यों के समान धर्म का पालन करने लगते हैं। क्योंकि द्रव्यत्व की अपेक्षा सब जीव, चाहे वे किसी भी पर्याय में क्यों न हों, आपस में बराबर हैं। यही हाथी का जीव, जैनधर्म के प्रसाद से, इस पशुपर्याय को छोड़कर बारहवें स्वर्ग में देव हुआ और फिर उन्नति के सोपान पर चढ़ता-चढ़ता कुछ ही जन्म लेने के पश्चात् पूज्य तीर्थंकर 'श्रीपार्श्वनाथ' हुआ था।

इसीतरह और बहुत से पशुओं ने जैनधर्म को धारण करके अपने आत्मा का विकास और कल्याण किया है। जब पशुओं तक ने जैनधर्म को धारण किया है, तब फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या? वे तो सर्व प्रकार से इसके योग्य और दूसरे जीवों को इस धर्म में लगाने वाले ठहरे। सच पूछा जाय तो, किसी भी देश, जाति या वर्ण के मनुष्य को इस धर्म के धारण करने की कोई मनाही (निषेध) नहीं है। प्रत्येक मनुष्य खुशी से जैनधर्म को धारण कर सकता है। इसी से सोमदेवसूरि ने कहा है कि:-

“मनोवाङ्मायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः।”

अर्थात्- मन, वचन, काय से किये जाने वाले धर्म का अनुष्ठान करने के लिये सभी जीव अधिकारी हैं।

जैन-शास्त्रों तथा इतिहास-ग्रंथों के देखने से भी यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और इसमें कोई संदेह नहीं रहता कि, प्रायः सभी जातियों के मनुष्य हमेशा से इस पवित्र जैनधर्म को धारण करते आए हैं और उन्होंने बड़ी भक्ति तथा भाव के साथ इसका पालन किया है।

देखिये, क्षत्रिय लोग पहले अधिकतर जैनधर्म का ही पालन करते थे। इस धर्म से उनको विशेष अनुराग और प्रीति थी। वे जगत का और अपनी आत्मा का कल्याण करनेवाला इसी धर्म को समझते थे। हजारों राजा ऐसे हो चुके हैं जो जैनी थे अथवा जिन्होंने जैनधर्म की दीक्षा धारण की थी। खासकर, हमारे जितने तीर्थंकर हुए हैं वे सब ही क्षत्रिय थे। इस समय भी जैनियों में बहुत से जैनी ऐसे हैं- जो क्षत्रियों की सन्तान में से हैं परंतु उन्होंने क्षत्रियों का कर्म छोड़कर वैश्य का कर्म अङ्गीकार कर लिया है, इसलिये वैश्य कहलाते हैं। इसीप्रकार ब्राह्मण लोग भी पहले जैनधर्म को पालन करते थे और इस समय भी कहीं- कहीं सैकड़ों ब्राह्मण जैनी पाये जाते हैं। जिससमय भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने क्षत्रियों आदि की परीक्षा

लेकर जिनको अधिक धर्मात्मा पाया उनका एक ब्राह्मण वर्ण स्थापित किया था उस समय तो ब्राह्मण लोग गृहस्थ जैनियों के पूज्य समझे जाते थे और बहुत काल तक बराबर पूज्य बने रहे। परंतु पीछे से जब वे स्वच्छंद होकर अपने जैनधर्म-कर्म में शिथिल हो गये और जैनधर्म से गिर गये तब जैनियों ने आम तौर से उनका पूजना और मानना छोड़ दिया। परंतु फिर भी इस ब्राह्मण वर्ण में बराबर जैनी होते ही रहे। हमारे परम पूज्य गौतम गणधर, भद्रबाहु स्वामी और पात्रकेसरी आदिक बहुत से आचार्य ब्राह्मण ही थे, जिन्होंने चहुँ ओर जैनधर्म का डंका बजाकर जगत् के जीवों का उपकार किया है। रहे वैश्य लोग, वे जैसे इस वक्त जैनधर्म को पालन करते हैं, वैसे ही पहले भी पालन करते थे। ऐसी ही हालत शूद्रों की है, वे भी कभी जैनधर्म को धारण करने से नहीं चूके और ग्यारहवीं प्रतिमा के धारक क्षुल्लक तक तो होते ही रहे हैं। इस वक्त भी जैनियों में शूद्र जैनी मौजूद हैं। बहुत से जैनी शूद्रों का कर्म (पेशा) करते हैं। और शूद्र ही क्यों? हमारे पूर्वज तीर्थंकरों तथा ऋषि-मुनियों ने तो चांडालों, भीलों और म्लेच्छों तक को जैनधर्म का उपदेश देकर उन्हें जैनी बताया है, और न केवल जैनधर्म का श्रद्धान ही उनके हृदयों में उत्पन्न किया है बल्कि श्रावक के व्रत भी उन से पालन कराये हैं, जिनकी सैकड़ों कथाएँ शास्त्रों में मौजूद हैं।

‘हरिवंशपुराण’ में लिखा है कि, एक ‘त्रिपद’ नाम के धीवर (कहार) की लड़की का जिसका नाम ‘पूतिगंधा’ था और जिसके शरीर से दुर्गंध आती थी समाधिगुप्त मुनि ने श्रावक के व्रत दिये। वह लड़की बहुत दिनों तक आर्थिकाओं के साथ रही, अंत में सन्यास धारण करके मरी तथा सोलहवें स्वर्ग में जाकर देवी हुई और फिर वहाँ से आकर श्रीकृष्ण की पटरानी ‘रुक्मिणी’ हुई।

चम्पापुर नगर में ‘अग्निभूत’ मुनि ने, अपने गुरु सूर्यमित्र मुनिराज की आज्ञा से, एक चांडाल लड़की को, जो जन्म से अंधी पैदा हुई थी और जिसकी देह से इतनी दुर्गंध आती थी कि कोई उसके पास जाना नहीं चाहता था और इसीकारण वह बहुत दुखी थी, जैनधर्म का उपदेश देकर श्रावक के व्रत धारण कराये थे। इसकी कथा सुकुमालचरित्रादिक शास्त्रों में मौजूद है। यही चांडाली का जीव दो जन्म लेने के पश्चात् तीसरे जन्म में ‘सुकुमाल’ हुआ था।

‘पूर्णभद्र’ और ‘मानभद्र’ नाम के दो वैश्य भाइयों ने एक चांडाल को श्रावक के व्रत ग्रहण कराए थे और उन व्रतों के कारण वह चांडाल मरकर सोलहवें स्वर्ग में बड़ी ऋद्धि का धारक देव हुआ था, जिसकी कथा पुण्यासव कथाकोश में पाई जाती है।

‘हरिवंशपुराण’ में लिखा है कि, गंधमादन पर्वत पर एक ‘परवर्तक’ नाम के भील को श्रीधर आदिक दो चारण मुनियों ने श्रावक के व्रत दिये। इसीप्रकार म्लेच्छों के जैनधर्म धारण करने के संबंध में भी बहुत सी कथाएँ विद्यमान हैं, जबकि जैनी चक्रवर्ती राजाओं ने तो म्लेच्छों की कन्याओं से विवाह तक किया है। ऐसे विवाहों से उत्पन्न हुई सन्तान मुनि-दीक्षा ले सकती थी, इतना ही नहीं किंतु म्लेच्छ देशों से आए हुए म्लेच्छ तक भी मुनिदीक्षा के अधिकारी ठहराये गये हैं।^१

श्रीनेमिनाथ के चचा वसुदेवजी ने भी एक म्लेच्छ राजा की पुत्री से, जिसका नाम जरा था, विवाह किया था, और उससे ‘जरत्कुमार’ उत्पन्न हुआ था, जो जैनधर्म का बड़ा भारी श्रद्धालु था और जिसने अंत में जैनधर्म की मुनिदीक्षा धारण की थी। यह कथा भी हरिवंशपुराण में लिखी है।^२ और इसी पुराण में, जहाँ पर श्रीमहावीर स्वामी के समवसरण का वर्णन है वहाँ पर यह भी लिखा है कि समवसरण में जब श्रीमहावीर स्वामी ने मुनिधर्म और श्रावकधर्म का उपदेश दिया तो उसको सुनकर ‘बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग मुनि हो गये और चारों ही वर्ण के स्त्री-पुरुषों ने श्रावक के बारह व्रत धारण किये’। इतना ही क्यों? उनकी पवित्र वाणी का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि कुछ जानवरों ने भी अपनी शक्ति के अनुसार श्रावक के व्रत धारण किये। इससे भली-भांति प्रकट है कि, प्रत्येक मनुष्य ही नहीं बल्कि प्रत्येक जीव जैनधर्म को धारण कर सकता है। इसलिये जैनधर्म सबको बतलाना चाहिये।

इन सब उल्लेखों पर से, यद्यपि प्रत्येक मनुष्य खुशी से यह नतीजा निकाल सकता है कि, जैनधर्म आज-कल के जैनियों की खास मीरास नहीं है, उस पर मनुष्य क्या, जीवमात्र को पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त है और प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति अथवा सामर्थ्य के अनुसार उसको धारण और पालन कर सकता है, फिर भी यहाँ पर कुछ थोड़े से प्रमाण और उपस्थित किये जाते हैं जिससे इस विषय

के संदेह अथवा भ्रम का और भी अच्छी तरह निरसन हो सके।

(१) ‘पूजासार’ के श्लोक नं. १६ में जिनेन्द्रदेव की पूजा करनेवाले के दो भेद वर्णन किये हैं- एक नित्य पूजन करनेवाला, जिसको ‘पूजक’ कहते हैं और दूसरा प्रतिष्ठादि विधान करनेवाला, जिसको ‘पूजकाचार्य’ कहते हैं। इसके पश्चात् दो श्लोक में आद्य (प्रथम) भेद ‘पूजक’ का स्वरूप दिया है और उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र इन चारों ही वर्णों के मनुष्यों को पूजा करने का अधिकारी ठहराया है। यथा:-

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽऽद्यः सुशीलवान्।

दृढव्रतो दृढाचारः सत्यशौचसमन्वितः ॥१७॥

(२) इसीप्रकार ‘धर्मसंग्रहश्रावकाचार’ के ९वें अधिकार के श्लोक नं. १४२ में श्रीजिनेन्द्रदेव की पूजा करने वाले के उपर्युक्त दोनों भेदों का कथन करने के अनंतर ही एक श्लोक में- ‘पूजक’ के स्वरूप कथन में- ब्राह्मणादिक चारों वर्णों के मनुष्यों को पूजा करने का अधिकारी बतलाया है। वह श्लोक यह है-

ब्राह्मणादिचतुर्वर्ण्य आद्यः शीलव्रतान्वितः।

सत्यशौचदृढाचारो हिंसाद्यव्रतदूरगः ॥१४३॥

और इसी ९वें अधिकार के श्लोक नं. २२५ में ब्राह्मणों के पूजन करना, पूजन कराना, पढ़ना, पढ़ाना, दान देना और दान लेना, ऐसे छह कर्म वर्णन करके उससे अगले श्लोक में “यजनाध्ययने दानं परेषां त्रीणि ते पुनः” इस वचन से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के पूजन करना, पढ़ना और दान देना, ऐसे तीन कर्म वर्णन किये हैं।

इन दोनों शास्त्रों के प्रमाणों से भली-भांति प्रकट है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के मनुष्य जैनधर्म को धारण करके जैनी हो सकते हैं। तब ही तो वे श्रीजिनेन्द्रदेव की पूजा करने के अधिकारी वर्णन किये गये हैं।

(३) ‘सागारधर्मावृत’ में पं. आशाधर जी ने लिखा है कि:-

शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपुः शुद्ध्याऽस्तु तादृशः।^३

जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक् ॥

(अ.२ श्लोक २२)

अर्थात्- आसन और बर्तन वगैरह जिसके शुद्ध हो, मांस और मंदिरा आदि के त्याग से जिसका आचरण पवित्र

हो और नित्य स्नान आदि के करने से जिसका शरीर शुद्ध रहता हो, ऐसा शूद्र भी ब्राह्मणादिक वर्णों के सदृश श्रावक धर्म का पालन करने के योग्य है। क्योंकि जाति से हीन आत्मा भी कालादिक लब्धि को पाकर जैनधर्म का अधिकारी होता है।

इसीतरह श्रीसोमदेव आचार्य ने भी, 'नीतिवाक्यामृत' के नीचे लिखे वाक्य में, उपर्युक्त तीनों शुद्धियों के होने से शूद्रों को धर्मसाधन के योग्य बतलाया है:-

“आचाराऽनवद्यत्वं शुचिरुपस्कारः शरीर शुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान्।”

(४) रत्नकरण्ड श्रावकाचार में स्वामि समन्तभद्राचार्य लिखते हैं कि:-

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।

देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥

अर्थात्- सम्यग्दर्शन से युक्त- जैनधर्म के श्रद्धालु-चांडाल पुत्र को भी गणधरादि देवों ने 'देव' कहा है- 'आराध्य' बतलाया है- उसकी दशा उस अंगार के सदृश है जो बाह्य में भस्म से आच्छादित होने पर भी अंतरङ्ग में तेज तथा प्रकाश को लिये हुए है और इसलिये कदापि उपेक्षणीय नहीं होता।

इससे चांडाल का जैनी बन सकना भली-भांति प्रकट ही नहीं किंतु अभिमत जान पड़ता है। इसके सिवाय, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो चौथे गुणस्थान में ही हो जाती है, चांडाल इससे भी ऊपर जा सकता है और श्रावक के व्रत धारण कर सकता है; इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं है। रविषेणाचार्य ने तो 'पद्मपुराण' में ऐसे व्रती चाण्डाल को 'ब्राह्मण' का दर्जा प्रदान किया है और लिखा है कि कोई भी जाति बुरी अथवा तिरस्कार के योग्य नहीं है- सभी गुणधर्म की अधिकारिणी हैं। यथा:-

न जातिर्गहिता काचिद्गुणाः कल्याणकारणम्।

व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥११-२०३॥

(५) सोमसेन के त्रैवर्णिकाचार में भी एक पुरातन श्लोक निम्नप्रकार से पाया जाता है:-

विप्रक्षत्रियविदशूद्रः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।

जैनधर्म पराः शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमाः ॥

(अ.७ श्लोक १४२)

इसमें लिखा है कि- 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण अपने-अपने नियत कर्म-विशेष की

अपेक्षा से कहे गये हैं, जैनधर्म को पालन करने में इन चारों वर्णों के मनुष्य परम समर्थ हैं और उसे पालन करते हुए वे सब आपस में भाई-भाई के समान हैं।'

इन सब प्रमाणों से सिद्धांत की अपेक्षा, प्रवृत्ति की अपेक्षा, और शास्त्राधार की अपेक्षा सब प्रकार से यह बात कि, प्रत्येक मनुष्य जैनधर्म को धारण कर सकता है, कितनी स्पष्ट और साफ तौर पर सिद्ध है, इसका अनुमान हमारे पाठक स्वयं कर सकते हैं और मालूम कर सकते हैं कि वर्तमान जैनियों की यह कितनी भारी गलती और बेसमझी है जो केवल अपने आपको ही जैनधर्म का मौरूसी हकदार समझ बैठे हैं।

अफसोस! जिनके पूज्य पुरुषों, तीर्थंकरों और ऋषि-मुनियों आदि का तो इस धर्म के विषय में यह ख्याल और यह कोशिश थी कि कोई जीव भी इस धर्म से वंचित न रहे- यथासाध्य प्रत्येक जीव को इस धर्म में लगाकर उसका हित साधन करना चाहिये, उन्हीं जैनियों की आज यह हालत है कि, वे कंजूस और कृपण की तरह जैनधर्म को छिपाते फिरते हैं। न आप इस धर्मरत्न से लाभ उठाते हैं और न दूसरों को ही लाभ उठाने देते हैं। इससे मालूम होता है कि, आजकल के जैनी बहुत ही तंगदिल (संकीर्णहृदय) हैं और इसी तंगदिली ने उन पर संगदिली (पाषाणहृदयता) की घटा छा रक्खी है। खुदगर्जी (स्वार्थपरता) का उनके चारों तरफ राज्य है। यही कारण है कि वे दूसरों का उपकार करना नहीं चाहते और न किसी को जैनधर्म का श्रद्धालु बनाने की कोई खास चेष्टा ही करते हैं। उनकी तरफ से कोई डूबो या तिरो, उनको इससे कुछ प्रयोजन नहीं। अपने भाईयों की इस अवस्था को देख कर बड़ा ही दुःख होता है।

प्यारे जैनियों! आप उन वीरपुरुषों की संतान हो, जिन्होंने स्वार्थ-बुद्धि को कभी अपने पास तक फटकने नहीं दिया, पौरुषहीनता और भीरुता का कभी स्वप्न में भी जिनको दर्शन नहीं हुआ, जिनके विचार बड़े ही विशुद्ध, गंभीर तथा हृदय विस्तीर्ण थे और जो संसार भर के सच्चे शुभचिंतक तथा सब जीवों का हित साधन करने में ही अपने को कृतार्थ समझने वाले थे। आप उन्हीं की वंशपरम्परा में उत्पन्न हैं जिनका सारा मनोबल, वचनबल, बुद्धिबल और कायबल निरंतर परोपकार में ही लगा रहता था, धार्मिक जोश से जिनका मुखमंडल (चेहरा) सदा

दमकता था, जो अपनी आत्मा के समान दूसरे जीवों की रक्षा करते थे और इस संसार को समझकर निरंतर अपना तथा दूसरे जीवों का कल्याण करने में ही लगे रहते थे; और ऐसे ही पूज्य पुरुषों का आप अपने आपको अनुयायी तथा उपासक भी बतलाते हैं जो ज्ञान-विज्ञान के पूर्ण स्वामी थे, जिनकी सभा में पशु-पक्षी तक भी उपदेश सुनने के लिए आते थे, जिन्होंने जैनधर्म धारण करार कर दोड़ों जीवों का उद्धार किया था और भिन्न धर्मावलंबियों पर जैनियों के अहिंसा धर्म की छाप जमाई थी। इसलिए आप ही जरा विचार कीजिये कि क्या अपनी ऐसी हालत बनाना और दूसरों का उपकार करने से इस प्रकार हाथ खींच लेना अथवा जी चुराना आपके लिए उचित और योग्य है? कदापि नहीं।

प्यारे धर्म बंधुओं! हमें अपनी इस हालत पर बहुत ही लज्जित तथा शोकित होना चाहिये। हमारी इस लापरवाही (उदासीनता) और खामोशी (मौनवृत्ति) से जैनजाति को बड़ा भारी धक्का और धब्बा लग रहा है। हमने अपने पूज्य पुरुषों-ऋषिमुनियों के नाम को बट्टा लगा रखा है। यह सब हमारी स्वार्थपरता, निष्पौरुषता, संकीर्णहृदयता और विपरीत बुद्धि का परिणाम है। इसका सारा कलङ्क हमारे ही ऊपर है। वास्तव में हम बड़े भारी अपराधी हैं। जब हम अपनी आँखों के सामने इस बात को देख रहे हैं कि अज्ञान से अंधे प्राणी बिल्कुल बेसुध हुए मिथ्यात्वरूपी कुँए के सन्मुख जा रहे हैं और उसमें गिर रहे हैं, और फिर भी हम मौनावलम्बी हुए चुपचाप बैठे हैं- न उन बेचारों को उस कुँए से सूचित करते हैं, न कुँए में गिरने से बचाते हैं और न कुँए में गिरे हुए को निकालने का प्रयत्न करते हैं, तो इससे अधिक और क्या अपराध हो सकता है? अब हमको इस कलङ्क और अपराध से मुक्त होने के लिए अवश्य प्रयत्नशील होना चाहिए।

सबसे प्रथम हमें अपने में से इन स्वार्थपरता आदिक दोषों को निकाल डालना चाहिए। फिर उत्साह की कटि बांधकर और परोपकार को ही अपना मुख्य धर्म संकल्प करके अपने पूज्य पुरुषों अथवा ऋषि-मुनियों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए और दूसरे जीवों पर दया करके उनको मिथ्यात्वरूपी अंधकार से निकाल कर जिनवाणी के प्रकाशरूप जैनधर्म की शरण में लाना चाहिए। यही हमारा इससमय मुख्य कर्तव्य है और इसी कर्तव्य को पूरा

करने से हम उपर्युक्त कलङ्क से विमुक्त हो सकते हैं। अथवा यों कहियें की अपने मस्तक पर जो कालिमा का टीका लगा हुआ है उसको दूर कर सकते हैं। हमको चाहिये कि, अपने इस कर्तव्य का पालन करने में अब कुछ भी विलंब न करें। क्योंकि इस वक्त काल की गति जैनियों के अनुकूल है। अब वह समय नहीं रहा कि, जब अन्यायी और निष्ठुर राजा तथा बादशाहों के अन्याय और अत्याचारों के कारण जैनी अपने को जैनी कहते हुए डरते थे और अपने धर्म तथा शास्त्रों को छिपाने के लिए बाध्य होते थे। अब वह समय आ गया है कि, लोगों की प्रवृत्ति सत्यता की खोज और निष्पक्षपातता की ओर होती जा रही है। इसलिए जैनियों के लिए यह समय बड़ा ही अमूल्य है। ऐसे अवसर पर अवश्य अपने धर्मरत्न का प्रकाश सर्वसाधारण में फैलाना चाहिए। सर्वमनुष्यों पर जैनधर्म के सिद्धांत और उनका महत्त्व प्रगट करना चाहिए और उनको बतलाना चाहिए कि कैसे जैनधर्म ही सभी चीजों का कल्याण कर सकता है और उनको वास्तविक सुख की प्राप्ति करा सकता है। इससमय हमारे भाईयों को सिर्फ थोड़ी सी हिम्मत और परोपकार बुद्धि की जरूरत है। बाकी यह खूबी खुद जैनधर्म में मौजूद है कि, वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेवे। परंतु दूसरों को इस धर्म से परिचय और जानकारी कराना मुख्य है और जैनियों का कर्तव्य है।

अतः प्यारे जैनियों! आप कुछ भी न घबराते हुए इस धर्मरत्न को हाथ में लेकर चौड़े मैदान में खड़े हो जाइये और जौहरियों से पुकार कर कहिये कि, वे आकर इस रत्न की परीक्षा करें। फिर आप देखेंगी की कितने धर्मजौहरी इस धर्मरत्न को देखकर मोहित होते हैं और किस पर अपना जीवन अर्पण करने के लिए उद्यमी नजर आते हैं। अभी हाल में कुछ लोगों के कानों तक इस धर्म का शुभ समाचार पहुँचा ही था कि, वे तुरंत मन-वचन-काय से इसके अनुयायी और भक्त बन गये हैं। इसलिए मेरा बार-बार यही कहना है कि, कोई भी मनुष्य इस पवित्र धर्म से वंचित न रक्खा जावे, किसी न किसी प्रकार से प्रत्येक मनुष्य के कानों तक इस धर्म की आवाज (पुकार) पहुँच जानी चाहिए और इस बात का कभी दिल में ख्याल भी न लाना चाहिए कि अमुक मनुष्य इस धर्म को धारण करने के अयोग्य है अथवा इस धर्म का पात्र ही नहीं है। क्योंकि यह धर्म प्राणी मात्र का धर्म है। यदि

कोई मनुष्य पूरी तौर पर इस धर्म का पालन नहीं कर सकता तो भी थोड़ा बहुत पालन कर सकता है। कम से कम यदि उसका श्रद्धान ही ठीक हो जायेगा तो उससे बहुत काम निकल जायेगा और वह फिर धीरे-धीरे यथावत् आचरण करने में भी समर्थ हो जायेगा। इसीलिए शायद सोमदेव सूरि ने 'यशस्तिलक' में लिखा है कि-

“नवैः संदिग्धनिर्वाह विदध्याद् गणवर्धनम्।”

अर्थात्- ऐसे ऐसे नए मनुष्यों से भी अपने समाज की समूहवृद्धि करनी चाहिये जो संदिग्ध निर्वाह हैं- जिनके विषय में यह संदेह है कि वे समाज के आचार-विचार का यथेष्ट पालन कर सकेंगे।

दूसरे नीति का यह वाक्य है कि 'अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्त्र दुर्लभः' अर्थात् कोई भी मनुष्य स्वभाव से अयोग्य नहीं है। परंतु किसी मनुष्य को योग्यता की ओर लगाना या किसी की योग्यता से काम लेना यही कठिन कार्य है और इसी पर दूसरे मनुष्य की योग्यता की परीक्षा निर्भर है। इसलिये यदि हम किसी मनुष्य को जैनधर्म धारण न करावें या किसी मनुष्य को जैनधर्म का श्रद्धानी न बना सकें, तो समझना चाहिये कि यह हमारी ही अयोग्यता है। इसमें उस मनुष्य का कोई दोष नहीं है और न इसमें जैनधर्म का ही कोई अपराध हो सकता है। इसलिये इस कच्चे विचार और बालखाल को बिल्कुल हृदय से निकाल कर फेंक देना चाहिये कि, अमुक मनुष्य को तो जैनधर्म बतलाया जावे और अमुक को नहीं। प्रत्येक मनुष्य को जैनधर्म बतलाना चाहिये और जैनधर्म श्रद्धानी बनाना चाहिये। क्योंकि यह धर्म प्राणी मात्र का धर्म है- किसी खास जाति या देश से संबद्ध (बँधा हुआ) नहीं है।

यहाँ पर सब प्रकार के मनुष्यों को जैनधर्म का श्रद्धानी अथवा जैनी बनाने से हमारे किसी भी भाई को यह समझकर भयभीत न होना चाहिये कि, ऐसा होने से सबका खाना पीना एकदम एक हो जावेगा। खाना-पीना और बात है- वह अधिकांश में अपने ऐच्छिक व्यवहार पर निर्भर है, लाजिमी नहीं-और धर्म दूसरी वस्तु है। दूसरे लोगों को जैनधर्म में दीक्षित करने के लिये हमें प्रायः उसी सनातन मार्ग पर चलना होगा जिस पर हमारे पूज्य पूर्वज और आचार्य महानुभाव चलते आए हैं और जिसका उल्लेख आदिपुराणादि आर्ष ग्रन्थों में पाया जाता है।^१ हमारे लिये पहले ही से सब प्रकार की सुगमताओं का मार्ग खुला हुआ

है। उसके लिये व्यर्थ अधिक चिंता करने अथवा कष्ट उठाने की जरूरत नहीं है। अतः हमको बिल्कुल निर्भय होकर, साहस और धैर्य के साथ, सब मनुष्यों में जैनधर्म का प्रचार करना चाहिये। सबसे पहले लोगों का श्रद्धान ठीक करना और फिर उनका आचरण सुधारना चाहिये। जैनी बनने और बनाने के लिए इन्हीं दो बातों की खास जरूरत है। इनके बाद समाजिक व्यवहार है, जो देश काल की परिस्थितियों- आवश्यकताओं-और परस्पर प्रेममय सद्वर्तन आदि पर विशेष आधार रखता है। उसके लिए कोई एक नियम नहीं हो सकता। वह जितना ही निर्दोष, दृढ़ तथा प्रेममूलक होगा उतना ही समाज और उसके धर्म स्थिति लिये उपयोगी तथा हितकारी होगा।^२

सन्दर्भ

१. जैसा कि 'लब्धिसार' की टीका के निम्न अंश से प्रकट है-

“म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथंभवतीति नाशंकितव्यं। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसंबंधानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूपनस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात् तथा जातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।”

(गाथा न. १९३)

२. हरिवंशपुराण के उल्लेखों के लिये दिखो पं. दौलतरामजी द्वारा अनुवादित भाषा हरिवंशपुराण अथवा जिनसेनाचार्य कृत मूलग्रंथ।

३. इस पद्यसे पहले स्वोपज्ञ टीका में यह प्रतिज्ञावाक्य भी दिया है-

“अथ शूद्रस्याप्याहारादिशुद्धिमतो ब्राह्मणादिवद्धर्म-क्रियाकारित्वं यथोचितमनुमन्यमानः प्राह-”

४. आदिपुराण में तो म्लेच्छों तक को कुलशुद्धि आदि के द्वारा अपने बना लेने की- उन्हें क्रमशः अपनी जाति में शामिल कर लेने की- व्यवस्था की गई है। जैसा उसके निम्न वाक्य से प्रकट है-

स्वदेशे ऽनक्षरम्लेच्छान् प्रजाबाधाविधायिनः।

कुलशुद्धिप्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः॥

(पर्व ४२ वीं)

५. कुछ वर्ष पहले लिखे लेख की संशोधित, परिवर्तित और परिवर्द्धित नई आवृत्ति, जो जैनमित्रमण्डल देहली के अनुरोध पर तैयार की गई।

'अनेकान्त' वर्ष १/किरण ५ से साभार